MIZORAM UNIVERSITY JOURNAL OF
HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES
A Refereed Bi-annual Journal
ISSN(P): 2395-7352
eISSN: 2581-6780
Vol. V, Issue 2 (December 2019) http://www.mzuhssjournal.in/

Jativad Se Mukti Aur Lohiya Ka Chintan (Liberation from Caste and Lohiya's Thoughts)

Amish Verma*

Abstract

Lohiya, through Socialist party, was trying to reconstruct India in a new manner, but for that annihilation of caste was a necessary pre-requisite. Lohiya believed that caste system had paralyzed a great portion of Indian society. He was into the politics with the greater aim to liberate the Indian society from the chains of casteism. Lohiya was very clear about the caste that it has nothing to do with one's profession, but it is fixed with one's birth itself. He did not indulge in finding the historical roots of caste system, rather he tried to understand its present form and the reasons for its sustainability till today. Lohiya put all his efforts to understand the present status of caste system and to contemplate over the factors which ensure the annihilation of caste. He insists upon the 'doctrine of special opportunity' for the socially backward castes to build a non-casteist egalitarian society. Lohiya firmly believed that Indian society could not become lively just solving the issue of economic inequality, it is impossible until the caste issue is solved. It can be pronouncedly said that Lohiya had a very clear and practical vision towards the caste and its annihilation.

***Keywords**: Caste System, Class, Backward Caste, Doctrine of Special Opportunity, Economic Dominance, Non-casteist Egalitarian Society, Reservation, Constitutional Protection.*

* Assistant Professor, Department of Hindi, Mizoram University, Aizawl – 796 004

जातिवाद से मुक्ति और लोहिया का चिंतन

डॉ. अमिष वर्मा

शोध-पत्र सार

लोहिया सोशलिस्ट पार्टी के जरिये जिस रूप में हिन्दुस्तान की पुनर्रचना करना चाहते थे, उसके लिए जाति प्रथा का विनाश एक ज़रूरी शर्त थी। लोहिया जाति प्रथा को 'हिन्दुस्तानी जीवन में सबसे ज्यादा लेडूबू उपादान 'मानते थे, जिसने भारतीय समाज के बड़े हिस्से को लकवाग्रस्त कर रखा है। इस जातिवाद के चंगुल से भारतीय समाज को मुक्त करने का लक्ष्य लेकर लोहिया अपनी राजनीति कर रहे थे। लोहिया की समझ बहुत साफ थी कि जाति का संबंध व्यक्ति के कर्म से नहीं है, बल्कि यह उसके जन्म से ही तय हो जाती है। लोहिया जातिप्रथा की ऐतिहासिक जड़ों की तलाश करने का बहुत प्रयास नहीं करते। जातिप्रथा की उत्पत्ति की प्रक्रिया में उलझने के बजाय लोहिया इसके वर्तमान स्वरूप और टिके रहने की वजहों को समझने की कोशिश करते हैं। जातिप्रथा के वर्तमान स्वरूप को बारीकी से समझना और इसके विनाश को सुनिश्चित करने वाले उपादानों पर विचार और अमल करना लोहिया की कोशिश रही। समता मूलक जाति विहीन समाज के निर्माण के लिए लोहिया सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियों के लिए 'विशेष अवसर के सिद्धान्त' पर बल देते है। लोहिया का मानना था कि केवल आर्थिक गैर बराबरी के मसले को हल करने से भारतीय समाज को जीवंत नहीं बनाया जा सकता जब तक कि जाति के मसले को हल न किया जाए। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि लोहिया के पास जाति को लेकर एक स्पष्ट और व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

बीजशब्द: जाति-प्रथा, वर्ग, पिछड़ी जाति, विशेष अवसर का सिद्धान्त, आर्थिक वर्चस्व, समतामूलक जाति विहीन समाज, आरक्षण, संवैधानिक सुरक्षा

हिन्दुस्तान में आज़ादी के बाद जाति प्रथा पर इतनी गहराई से विचार करने वाले और इसके विनाश के लिए सक्रिय प्रयास करने वाले लोहिया संभवतः पहले और आखिरी चिंतक एक्टिविस्ट रहे। लोहिया के लिए जाति-प्रथा का विनाश उनके अन्य राजनीतिक मुद्दों के साथ एक और मुद्दा भर नहीं था, बल्कि यह उनकी राजनीति की धुरी था। लोहिया सोशलिस्ट पार्टी के जरिये जिस रूप में हिन्दुस्तान की पुनर्रचना करना चाहते थे, उसके लिए जाति प्रथा का विनाश एक ज़रूरी शर्त थी। लोहिया जाति प्रथा को 'हिन्दुस्तानी जीवन में सबसे ज्यादा लेडूबू उपादान'[1] मानते थे, जिसने भारतीय समाज के बड़े हिस्से को लकवाग्रस्त कर रखा है। इस जातिवाद के चंगुल से भारतीय समाज को मुक्त करने का लक्ष्य लेकर लोहिया अपनी राजनीति कर रहे थे और

इसी क्रम में जाति प्रथा के संबंध में उनके विचार बनते और परिपक्व होते गए और साथ ही जाति-विनाश के सक्रिय राजनीतिक प्रयास भी चलते रहे।

जाति की अवधारणा को लेकर प्रायः एक 'बिगूचन' की स्थिति पैदा की जाती है जाति का संबंध कर्म से जोड़कर। ऐसा प्रायः वे लोग करते हैं जो जाति व्यवस्था को 'डिफेंड' करने की कोशिश करते हैं। लोहिया की समझ इस झोल से मुक्त है। वे बहुत साफ समझ रखते हैं कि 'जाति का गुण, कर्म से संबद्ध नहीं।'[2] कर्मणा जाति वाले सिद्धांत को अस्वीकार करते हुए लोहिया कहते हैं - "...कर्म परिवर्तन से जाति परिवर्तन भी हो जाएगा तो जाति का क्या मतलब?"[3] अपनी बात को और स्पष्ट करने के लिए लोहिया वर्ग और जाति के अन्तर को भी रेखांकित करते हैं - "वर्ग जड़ होकर जाति का गुण ले लेता है। ...यानी वर्ग चलायमान होता है। उसके विपरीत जाति में आमदनी और स्थान बंध सा जाता है। तब्दीली नहीं होती। वर्ग में परिवर्तन और संघर्ष चलता रहता है। चलायमान जाति को वर्ग और जड़ वर्ग को जाति कहते हैं। भारत जैसी जड़ जाति कहीं नहीं मिलेगी।"[4] अपनी पुस्तक 'इतिहास-चक्र' में जाति और वर्ग की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भी लोहिया लिखते हैं - "जाति को वर्ग से अलग करने वाला तत्व है सामाजिक संबंधों में स्थिरता; न व्यक्ति अपने से ऊपर के वर्ग में जा सके और न पूरा वर्ग हैसियत या आमदनी में ऊपर उठ सके। वर्ग अस्थिर जाति है और जाति स्थिर वर्ग।"[5]

भारतीय समाज में जाति प्रथा की मौजूदगी को लोहिया विदेशी शक्तियों के हाथों भारत की पराजयों का भी कारण मानते हैं। 17 जुलाई, 1959 को हैदराबाद में जाति के विषय में भाषण देते हुए लोहिया ने कहा था - "हिन्दुस्तान बार-बार विदेशियों के कब्जे में गया और हमले हम इतने झेल नहीं पाए, इसका भी सबब जाति प्रथा है...।"[6] हालाँकि जाति प्रथा को लोहिया इसका अकेला कारण नहीं मानते, मगर सबसे बड़ा कारण ज़रूर मानते हैं। अपनी बात को लोहिया और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हिन्दुस्तान की लगभग 90 फीसदी आबादी जो पिछड़ी जातियों की है, 'उनको जाति-प्रथा के कारण इतना मुरदा बना दिया है कि राजनीति, राजगद्दी, युद्ध वगैरह से उनकी दिलचस्पी नहीं रहती। ...राजनीति कौन लोग करते हैं। नेताओं को अगर निकाल लो तब तो 80-90 फीसदी आप पाओगे कि यही ऊँची जातिवाले राजनीति कर रहे हैं। रोजमर्रा राजनीति में दिलचस्पी लेने वाले कौन लोग हैं? वे ही ऊँची जाति वाले लोग हैं।'[7] राजनीति और पूरे अर्थतंत्र पर कब्जा जमाकर बैठे मुट्ठीभर ऊँची जाति के लोगों ने देश की 90 फीसदी आबादी को ऐसी मानसिक स्थिति में ला दिया है कि 'हिन्दुस्तान की आबादी की बड़ी संख्या राजनीति से वैरागी रही है और वह लड़ी वगैरह नहीं।'[8] लोहिया ने जून, 1962 में 'जाति' शीर्षक निबंध में लिखा - "जो लोग कहते हैं कि फूट के कारण देश गुलाम बनता है, वे

इतिहास, राजनीति और समाजशास्त्र, कुछ नहीं जानते। हिन्दुस्तान गुलाम बनता रहा है मुख्यतः जनता की उदासी के कारण, और इस उदासी का सबसे बड़ा कारण जाति-प्रथा रही है।''[9]

यहाँ 'पिछड़ी जाति' के बारे में लोहिया की अवधारणा को स्पष्ट कर देना ज़रूरी है। आज हम जिस सांवैधानिक अर्थ में 'पिछड़ी जाति' पद का प्रयोग करते हैं, उस से लोहिया की 'पिछड़ी जाति'का अर्थ भिन्न और व्यापक है। लोहिया सामाजिक रूप से पिछड़े तमाम समुदायों को 'पिछड़ी जाति'के दायरे में लाते हैं और इसे व्यापक बनाते हुए कहते हैं - ''औरत, शूद्र, हरिजन, अल्पसंख्यकों में विशेष दबे मुसलमान और ईसाई तथा आदिवासी देश की पिछड़ी जातियाँ हैं।''[10] इसलिए लोहिया जब 'पिछड़ी जातियों' की बात कहते हैं, तब उससे यह भ्रम कतई नहीं होना चाहिए कि वे आज के प्रचलित अर्थ में केवल पिछड़ी जातियों की बात कर रहे हैं।

लोहिया जातिप्रथा की ऐतिहासिक जड़ों की तलाश करने का बहुत प्रयास नहीं करते। वे मानते हैं कि भारत में जाति के निर्माण के स्थायी सिद्धांत तय करने के लिए अभी पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है। 'इतिहास-चक्र' पुस्तक में लोहिया साफ लिखते हैं - ''जाति का जो स्वरूप सिर्फ भारत में बना, वह कैसे उभरा, यह भी बहुत अटकल का विषय है। लेकिन इसने ऐसा समायोजन प्राप्त किया जिसमें जाति की आश्चर्यजनक स्वीकार्यता और समाज की व्यापक मुर्दनी का मेल हो गया।''[11]

जातिप्रथा की उत्पत्ति की प्रक्रिया में उलझने के बजाय लोहिया इसके वर्तमान स्वरूप और टिके रहने की वजहों को समझने की कोशिश करते हैं। जातिप्रथा के वर्तमान स्वरूप को बारीकी से समझना और इसके विनाश को सुनिश्चित करने वाले उपादानों पर विचार और अमल करना लोहिया की कोशिश रही। भारत में जाति-व्यवस्था को मजबूती से टिकाए रखने में धर्म की भूमिका को लोहिया खूब बेहतर ढंग से समझ रहे थे। 'जन्म के आधार पर वर्गीकरण और उसे धर्म की स्वीकृति'[12] को लोहिया जाति के आवश्यक लक्षण मानते हैं। धर्म ने जाति के लिए एक अभेद्य कवच का काम किया है। भारतीय समाज में जातिप्रथा से सर्वाधिक पीड़ित और प्रताड़ित जनता भी इतनी धर्मभीरु बना दी गई है कि तमाम सामाजिक यातनाओं को झेलते हुए भी वह धर्म और धर्मग्रंथों द्वारा संरक्षण प्राप्त जाति-व्यवस्था के विरुद्ध आचरण करने का साहस नहीं जुटा पाती। और तो और, प्रायः यह धर्मभीरु जनता तो यह समझ ही नहीं पाती कि वह कुछ चालाक लोगों की स्वार्थी व्यवस्था का शिकार है! लोहिया लिखते हैं - ''समय और धर्म ने भारत की जाति-व्यवस्था के तीखे किनारों को घिस दिया है और जाति को उन लोगों के लिए भी स्वीकार्य बनाकर जो जाति की यातना भोग रहे हैं, क्रूरता को जमीन के नीचे व्यापक और छिपे विष के रूप में दबा दिया गया है।''[13] अंबेडकर ने भी अपने सुदीर्घ और सुचिन्तित निबंध 'जातिप्रथा-उन्मूलन' में हिन्दू धर्म तथा धर्मशास्त्रों द्वारा जातिप्रथा के पोषण तथा उसे ईश्वरीय व्यवस्था के रूप

में स्थापित किए जाने का जिक्र किया है। वे लिखते हैं - "जाति-व्यवस्था ऐसे कुछ धार्मिक विश्वासों का स्वाभाविक परिणाम है, जो शास्त्र-सम्मत हैं। शास्त्रों के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि... यदि उल्लंघन किया जाएगा तो पाप लगेगा।"[14]

भारत में जाति-प्रथा के विरुद्ध कई संघर्ष हुए है। जाति-व्यवस्था के नाश के नाम पर कई आंदोलन और प्रयास हुए, लेकिन जातिवाद थोड़े-बहुत स्वरूप परिवर्तन के साथ अनवरत चलता रहा है। 'जातिवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' (अगस्त, 1956) शीर्षक लेख में लोहिया लिखते हैं - "आजतक जितने सुधारवादी आंदोलन हुए, सब के सब सनातन हिन्दू व्यवस्था द्वारा उदरस्थ कर लिए गए और जातिवाद का भयानक दलदल अभी बना हुआ है। यह दलदल इतना गहरा है कि बड़ा-से-बड़ा पत्थर इसके गर्भ में कहाँ चला जाता है, कुछ भी पता नहीं चलता। जब तक यह दलदल सुखा नहीं दिया जाता, भारत में जातिवाद का नाश नहीं हो सकता।"[15] लोहिया जाति-प्रथा के विरुद्ध हुए तमाम प्रयासों से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने इन प्रयासों की सीमा को ठीक-ठीक पहचाना था। उनका मानना था कि 'जाति मिटाने के अबतक के सिद्धांत एक को मिटाकर दूसरे को बनाने वाले हैं।'[16] लोहिया का मानना था और बिल्कुल ठीक मानना था कि समाज में जातियों के शक्ति-समीकरण को बदल देने या उलट देने मात्र से जाति-प्रथा का अन्त नहीं हो सकता। जातियाँ तो तब भी रहेंगी, जातिवाद भी रहेगा और जातिवादी शोषण भी रहेगा। हाँ, इस शक्ति-समीकरण के बदलने से कुछ पिछड़ी जातियों और खासकर उन जातियों के नेताओं को कुछ लाभ मिल जाएंगे, पर सामाजिक जड़ता जस-की-तस रहेगी। इस प्रक्रिया में दलित-पिछड़ी जातियाँ इस्तेमाल होती हैं, परन्तु वास्तविक परिवर्तन घटित नहीं होता। इसलिए इस तरह के प्रयासों में लोहिया की आस्था कभी नहीं रही। उनका कहना था कि "जाति-प्रथा को समूचे भारत में नष्ट करने के बजाय, इस या उस जाति को ऊँचा उठाने के लिए ही दबी जातियों के विद्रोह को हमेशा और बार-बार बेजा इस्तेमाल किया गया।"[17] लोहिया जाति-प्रथा के नाश के नाम पर राजनीतिक आर्थिक वर्चस्व का केवल एक जाति से दूसरी जाति के बीच हस्तांतरण नहीं चाहते थे। वे जाति विहीन समाज के निर्माण पर ज़ोर देते हैं जिसमें सभी लोग अधिकार संपन्न हों - "अगर आप चाहते हो कि कोई एक सुखी न हो, बल्कि सभी सुखी हों तो फिर इस जाति के चक्र को तोड़ना होगा। वह तभी हो सकता है, जबकि किसी एक जाति के अधिकार को कम करके दूसरी को बिठाने के बजाय कोशिश यह की जाए कि सब लोगों के अधिकार करीब-करीब बराबर से हो जाएँ। इसका कोई तरीका निकाला जाए।"[18]

समतामूलक जातिविहीन समाज के निर्माण का एक तरीका लोहिया ने निकाला था - 'पिछड़ी जातियों के लिए विशेष अवसर का सिद्धांत'। लोहिया का मानना था कि देश की लगभग 90 फीसदी आबादी जो पिछड़ी हुई है, उसे योग्यता के आधार पर समान अवसर देकर आगे नहीं लाया जा सकता, क्योंकि योग्यता के आधार पर तो वही मुट्ठीभर ऊँची जाति वाले लोग आगे बने रहेंगे जिन्हे पिछले 3-4 हजार वर्षों से 'अगुआ गिरी' मिली हुई है। इसलिए लोहिया इस 90 फीसदी आबादी वाली पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी नौकरियों, राजनैतिक पार्टियों, व्यापार और पलटन में नेतृत्व की कम-से-कम 60 फीसदी जगहें आरक्षित करने की बात करते हैं। अपने इस विशेष अवसर के सिद्धांत के लिए लोहिया के अपने ठोस तर्क हैं - "देश में जहाँ हजारों वर्ष के जातिगत संस्कार, परंपराएँ और विशिष्ट योग्यताएँ बन चुकी हों, वहाँ योग्यता पर आधारित समान अवसर का सिद्धांत मौजूदा गैर बराबरी को घटाने के बजाय बढ़ाता है।"[19] इसलिए "देश में जनता के पिछड़े समूहों को उनकी योग्यता का लिहाज किए बिना सभी अवसर इस आशा में देने ही होंगे कि ज्यादा अवसर देने की इस उलटी प्रक्रिया से जाति-प्रथा का नाश होगा और जनता की योग्यता पुनर्जीवित होगी।"[20] नतीजा "कुछ वर्षो में ऐसा विशेष अवसर पाने के बाद पिछड़ी जातियों में भी परंपरागत योग्यताओं और संस्कारों का निर्माण होगा और तब समूचा हिन्दुस्तान सबल बन सकेगा।"[21] जातियों के बने रहने पर समाज में बराबरी नहीं आ सकती और बराबरी लाने के लिए योग्यता वाले सिद्धांत से काम नहीं चल सकता - ऐसी साफ समझ रखने वाले लोहिया को उन लोगों से चिढ़ थी जो जातियों को बनाए रखते हुए समाज में बराबरी लाने की बात करते थे। लोहिया वैसे लोगों से बचने की बात करते हैं - "जो लोग जातियों को रखते हुए बराबरी कायम करने की बात करते हैं, वे या तो धूर्त हैं या मूर्ख हैं। जातियों में बराबरी कायम तभी हो सकती है, जब जातियों का नाश हो, और जातियों का नाश तभी हो सकता है जब दबी हुई जातियों को विशेष और गैर बराबर अवसर दिया जाए। इसीलिए 60 सैकड़ा संरक्षण का सिद्धांत मानना होगा।"[22] लोहिया के समकालीन एम. एन. श्रीनिवास के आरक्षण संबंधी विचारों के साथ लोहिया के विचारों को रखकर देखें तो लोहिया की नीतियों को ज़्यादा बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। आरक्षण को लेकर श्रीनिवास का नज़रिया सकारात्मक नहीं है। श्रीनिवास का मानना है कि आरक्षण ने जातिवाद को और मजबूत किया है। अपने निबंध 'आधुनिक भारत में जाति' में वे लिखते हैं - "आजादी के बाद आबादी के पिछड़े तबकों और खासकर अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए बनाए गए प्रावधानों ने भी जातिवाद को नवजीवन प्रदान किया है।"[23] श्रीनिवास की दृष्टि का एकांगीपन साफ दिखाई पड़ता है। जातिगत विशेषाधिकारों को सदियों से भोगती आ रही उच्च जातियों द्वारा आबादी के एक बड़े और पिछड़े तबके का शोषण जातिवाद को मजबूती नहीं दे रहा था और इन्हीं पिछड़े तबकों के द्वारा अपने सामाजिक अधिकारों को सुनिश्चित करने की कोशिश ने जातिवाद को नवजीवन प्रदान किया! श्रीनिवास की यह दृष्टि उच्च जातियों के हितों को सुरक्षित रखने वाली दृष्टि है। श्रीनिवास की इस दृष्टि को और बेहतर ढंग से देखा-समझा जा सकता है, यदि हम मद्रास प्रेसिडेन्सी में कोटा व्यवस्था लागू होने की घटना पर

श्रीनिवास की टिप्पणी को देखें। वे लिखते हैं - "जातियों के निश्चित अंश (कोटा) की व्यवस्था कायम हुई; इसके परिणामस्वरूप प्रायः बेहतर योग्यता वाले ब्राह्मणों की बजाय कम योग्यता वाले गैर-ब्राह्मणों को लिया जाने लगा।"[24] श्रीनिवास यहाँ तक लिखते है कि सरकारी नौकरियों में जातीय आरक्षण के कारण 'कार्य क्षमता और ईमानदारी में कमी आई है' और 'ऐसी स्थिति में किसी प्रकार की योग्यता नहीं फल-फूल सकती।'[25] अभी पिछले वर्षों में पिछड़ी जाति के लिए 27% आरक्षण के विरोध में दिए जाने वाले 'मेरिटोक्रेसी' के तर्क और श्रीनिवास के तर्क में अद्भुत साम्य है! निकोलस डर्क्स ने भी अपनी किताब 'कास्ट्स ऑफ माइंड' में श्रीनिवास की इस समस्या को बिल्कुल ठीक रेखांकित किया है।[26]

बहरहाल, विशेष अवसर के सिद्धांत के कारण द्विजों के मन में कटुता और कड़वाहट स्वाभाविक रूप से पैदा होने की संभावना है। इसके अलावा पिछड़ी जातियों के लोगों के मन में भी अपने साथ सदियों से अन्याय करने वाली द्विज जातियों के प्रति कटुता की भावना पैदा होने की संभावना है। इन दोनों बातों का अंदाज़ा लोहिया को था और इस पहलू को लेकर वे शुरूआत से ही सतर्क और सचेत रहे। वे जाति विनाश की इस पूरी प्रक्रिया में किसी भी समुदाय में अनावश्यक कटुता पैदा नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे द्विजों को भी विश्वास में लेना चाहते थे और उन्हें यकीन दिलाना चाहते थे कि जातिप्रथा का नाश अन्ततः उनके लिए भी लाभकर होगा। मई 1956 में रायबरेली में पिछड़ी जाति संघ सम्मेलन में भाषण देते हुए लोहिया द्विज जातियों से अपील करते हुए कहते हैं - "कई हजार वर्षों की गलती को सुधारने और न्याय और समता के नए युग का प्रारंभ करने के लिए द्विज को वक्ती अन्याय सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। जिस दिन ब्राह्मण और बनिये अपना सर्वस्व समाप्त कर देंगे, वह उनके लिए बड़ा गौरवान्वित दिन होगा।"[27] साथ ही उसी भाषण में शूद्रों से भी द्विजों के प्रति कटुता की भावना से मुक्त होने की अपील करते हुए कहते हैं - "शूद्र को यह नहीं भूलना चाहिए कि द्विजों में अधिकांश लोग गरीब और महरूम हैं। परंतु जाति-प्रथा के चमत्कार ने मानवता के इन 8-9 करोड़ महरूम लोगों को यथास्थितिवाद का समर्थक बना दिया। वे शरीर के भिखारी हैं, पर अपने-आपको बुद्धि के मालिक मान बैठे हैं।"[28]

लोहिया पिछड़ी जातियों को द्विजों के प्रति जलन और उनके सामने घुटने टेकने – दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों से बचने की सलाह देते हैं। उनका मानना है कि इन दोनों ही प्रवृत्तियों से जातिप्रथा का नाश नहीं हो सकता, बल्कि ये प्रवृत्तियाँ जाति-विनाश के राह में रोड़े अटकाती हैं। "जलन की प्रवृत्ति द्विजों के विरुद्ध शूद्रों को खड़ा करती है और संरक्षण की माँग करती है। ...इससे वे लोग आगे आ जाते हैं जो द्विजों के विरुद्ध शूद्रों को ज्यादा उभाड़ सकें। इससे ऐसी विभूतियाँ पैदा नहीं होतीं जिनके पीछे न सिर्फ शूद्र बल्कि द्विज भी चल सकें। ...

दूसरी प्रवृत्ति (द्विजों के चरणों में सिर झुकाने वाली) से भी शूद्र समानता हासिल कर सकें ऐसा नहीं लगता। इस प्रवृत्ति से शूद्र स्वयं द्विज बन जाने की कोशिश करता है और द्विजों के गुणों के बजाय उनके अवगुण अपनाता है।' '[29] लोहिया अंबेडकर से प्रभावित थे, उनकी विद्वता के वे कायल थे। अंबेडकर की जाति-नीति से भी लोहिया का कोई खास विरोध नहीं था, लेकिन अंबेडकर के भीतर ऊँची जातियों के प्रति जो कटुता थी, वह लोहिया को खटकती थी। लोहिया अंबेडकर को केवल हरिजनों के नेता के रूप में नहीं, बल्कि पूरे हिन्दुस्तान के नेता के रूप में देखना चाहते थे। खुद अंबेडकर को लिखे 10 दिसंबर, 1955 के एक पत्र में लोहिया ने उन्हें लिखा - "अब भी मैं बहुत चाहता हूँ कि क्रोध के साथ दया भी जोड़नी चाहिए और कि आप न सिर्फ अनुसूचित जातियों के नेता बनें, बल्कि पूरी हिन्दुस्तानी जनता के भी नेता बनें।"[30] लोहिया की चाहत थी कि अंबेडकर उनके साथ आएँ 'केवल संगठन में ही नहीं बल्कि पूरी तौर से सिद्धांत में भी'। इस बात का जिक्र लोहिया ने अंबेडकर की मृत्यु के कुछ महीने बाद 1 जुलाई 1957 को मधु लिमये को लिखे एक पत्र में किया है।[31] इस पत्र में भी लोहिया ने अंबेडकर के मन में द्विजों के प्रति कटुता का जिक्र किया है। इसी कटुता की वजह से लोहिया को बराबर लगता रहा कि 'डॉ. अंबेडकर जैसे लोगों में भी सुधार की जरूरत है'।[32]

पिछड़ी जातियों के मन में द्विजों के प्रति जलन का भाव या कटुता पैदा करने के बजाय उनमें आत्म सम्मान का भाव जगाना लोहिया को उनके उत्थान के लिए ज्यादा ज़रूरी और कारगर उपाय लगता है। लोहिया की स्पष्ट धारणा थी कि "अगर किसी पिछड़ी जाति का सामूहिक रूप से उत्थान करना है तो सबसे पहले आत्मसम्मान और अभय को उगाना होगा।"[33] 17 जुलाई, 1959 को हैदराबाद में भाषण देते हुए लोहिया ने कहा - "जब ये चमार, कापू, पद्मशाली और माली, मादीगा ये सब अपने अधिकार के बारे में सचेत होंगे, तब उन्हें लगेगा कि उनकी इज्जत को ठेस लग रही है और तब इनमें जान जाएगी ...हिन्दुस्तान का यह हिस्सा जो अब तक बिल्कुल मुरदा है, प्राणवान बनेगा।"[34]

लोहिया भारतीय समाज की पुनर्रचना से जुड़े एक बहुत अहम सवाल को उठाते हैं कि केवल आर्थिक गैर बराबरी के मसले को हल करने से भारतीय समाज को जीवंत नहीं बनाया जा सकता जब तक कि जाति के मसले को हल न किया जाए। लोहिया को यह भ्रम भी कभी नहीं रहा कि आर्थिक मसले को हल कर लेने पर जाति प्रथा का धीरे-धीरे स्वतःनाश हो जाएगा। बल्कि वे तो बहुत साफ कहते हैं कि "आर्थिक गैर बराबरी और जाति-पाँति जुड़वाँ राक्षस हैं और अगर एक से लड़ना है तो दूसरे से भी लड़ना ज़रूरी है।"[35] केवल आर्थिक मोर्चे की लड़ाई से कोई बुनिया दी परिवर्तन नहीं आएगा इसे लोहिया बार-बार दुहराते हैं - "जितना भी आप खेती और कारखानों को सुधारते चले जाओ, लेकिन इस वक्त जो जातिगत फरक है, वह तो आधुनिकीकरण और

औद्योगीकरण में भी चलता रहेगा। यह मिट नहीं सकता। ...आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण का फायदा इन्हीं ऊँची जातियों को ज्यादा मिलता चला जाएगा।''[36] यहाँ फिर एक बार लोहिया के विचारों की तुलना उनके समकालीन समाजशास्त्री श्रीनिवास के विचारों से करना दिलचस्प होगा। औद्योगीकरण और जाति के मसले पर भी श्रीनिवास के विचार एकदम अव्यावहारिक एवं काल्पनिक मालूम पड़ते हैं। उनका मानना है कि औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के साथ-साथ जातिवाद स्वतः समाप्त हो जाएगा। औद्योगीकरण पर उन्हें इतना भरोसा है कि अन्तर्जातीय विवाह और सहभोज जैसे प्रयासों को वे जातिवाद के अंत के लिए गैरज़रूरी मानते हैं। वे लिखते हैं - ''मेरा विश्वास है कि केवल एक कारखाने की स्थापना से ही उस स्थान पर अन्तर्जातीय संबंधों में जितना सुधार होगा, उतना अन्तर्जातीय विवाह या भोज के प्रचार पर समान राशि खर्च करने से भी नहीं हो सकता।''[37] श्रीनिवास ने 1960 के आसपास जातिवाद के अंत के लिए औद्योगीकरण में अपनी आस्था प्रकट की थी। लेकिन आज 50 वर्षों से ज्यादा समय गुज़र जाने और पर्याप्त औद्योगीकरण के बावजूद जातिवाद अपने जटिलतम रूप में बना हुआ है। 'औद्योगीकरण जातिवाद का अंत कर देगा' - इस सिद्धांत में अब कोई दम नहीं रह गया है। जातिवाद ने औद्योगीकरण की प्रक्रिया में एक नया स्वरूप धारण कर लिया है। समझना मुश्किल नहीं है कि आज जातिवाद टूटा है या इसने और ज्यादा जटिलस्वरूप धारण कर लिया है! ज़ाहिर है लोहिया के सिद्धान्त की व्यावहारिकता श्रीनिवास की 'शास्त्रीयता' पर भारी है!

तत्कालीन कम्युनिस्ट पार्टी की जाति–नीति की भी लोहिया बहुत कड़े शब्दों में आलोचना करते हैं। सोशलिस्ट पार्टी के तीसरे राष्ट्रीय सम्मेलन (25-28 अप्रैल, 1956) में लोहिया कम्युनिस्टों की तरफ संकेत करते हुए कहते हैं - ''कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो सोचते हैं कि जातिप्रथा का सीधा सा मना करने की जरूरत नहीं और वर्ग-संघर्ष के द्वारा पूँजीशाही का नाश कर लेने से जातियों का नाश अपने-आप हो जाएगा। एक तो, जाति प्रथा वाले देश में केवल वर्ग-संघर्ष से पूँजीशाही और सामंतशाही गैर बराबरी का अंत करना संभव नहीं दीखता। दूसरे वर्ग हीन समाज की स्थापना के लिए जिन लोगों को वर्ग-संघर्ष इतना ज़रूरी लगता है, उन्हें जातिविहीन समाज कायम करने के लिए जाति-संघर्ष से इतनी चिढ़ क्यों?''[38] तमाम राजनीतिक दल जातिमुक्त समाज के निर्माण की बात करते हैं, मगर किसी के भी पास इसके लिए कोई ठोस योजना या रूपरेखा नहीं है। लोहिया एक और बात की तरफ भी इशारा करते हैं कि प्रायः सभी राजनीतिक दलों में शीर्ष नेतृत्व द्विजों के हाथों में है और इसलिए इनमें भीतर से जातिप्रथा के नाश की इच्छा-शक्ति का अभाव है। लोहिया बड़े तल्ख अंदाज़ में कहते हैं - ''द्विजों का, चाहे वे अलग-अलग पार्टियों में बँटे हों, और आपसी संघर्ष काफी बड़ा हो, एक तरह का अचेतन संयुक्त मोर्चा चलता रहता है। साथ उठना-बैठना, शादी-विवाह, नौकरियाँ और सिफारिषें इत्यादि उनमें एक संबंध बनाए रखते हैं।''[39] लोहिया ने यह बात आज़ादी के महज 5 साल बाद 1953 में कही थी। आज

आज़ादी के 69 सालों के बाद यह प्रवृत्ति और ज़्यादा वीभत्स तरीके से उभर चुकी है, नतीजा जातिवाद खत्म होने के बदले और अधिक विकृत और जटिल होता गया है।

कुछेक समाजशास्त्रियों (लोहिया मैक्स वेबर का उल्लेख करते हैं) और एक समय भारत के सुधारवादी आंदोलन के कुछेक नेताओं का भी मानना था कि यूरोप और आधुनिक तर्कनापरक विचारों के संपर्क में आने वाले शिक्षित हिन्दुस्तानी भारत वापस लौटकर जातिप्रथा को खत्म करेंगे। मगर इतिहास गवाह है कि ऐसा कुछ भी घटित नहीं हुआ। लोहिया का अपना अनुभव भी उन्हें यही बताता है। वे मैक्स वेबर और उनकी तरह सोचने वालों के विषय में अपने निबंध 'जाति-प्रथानाश: क्यों और कैसे?' (जून, 1958) में लिखते हैं - ''वे इस बात को नहीं समझते थे कि ये यूरोप पलट हिन्दुस्तानी ज़्यादातर ऊँची जातियों के ही होंगे और अपनी शिक्षा और बढ़ी हुई हैसियत के कारण विशिष्ट विवाहों के द्वारा वे जाति-प्रथा को और भी मजबूत बनाएंगे।''[40] 17 जुलाई, 1959 के अपने हैदराबाद वाले भाषण में भी लोहिया कहते हैं - ''विलायत कौन गए। .....छोटी जाति वालों के पास न पैसा ही था, न विद्या थी, न संस्कार थे। .....वास्तव में ब्राह्मण या रेड्डी में भी जो धनी कुटुंब हैं या जिनके अंदर पढ़ने-लिखने की परंपरा कुछ वर्षों से चली आ रही है, उन्हीं को मौका मिलता है। पहले से ही ऊँची जाति और जब विलायत से पासकर के लौट कर आते हैं तो ऊँची जाति में भी एक ऊँची जाति की सीढ़ी बन जाती है।''[41]

'सैद्धांतिक आधिपत्य की लंबी परंपरा' द्वारा 'निश्चल बना दी गई पिछड़ी जातियों'में गौरव और आत्मसम्मान का भाव जगाने और उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए लोहिया 'विशेष अवसर के सिद्धांत' पर ज़ोर देते हैं। लेकिन उनके लिए यह जाति-विनाश के लिए काफी नहीं है। जाति का समूल नाश तो अन्तर्जातीय विवाह और सहभोज से ही होगा। लोहिया गाँधी से खासे प्रभावित थे, मगर जातिप्रथा के संदर्भ में लोहिया के विचार गाँधी की तुलना में अंबेडकर के ज़्यादा करीब हैं। हालाँकि डा. रामविलास शर्मा ऐसा नहीं मानते। उनके अपने अलग निष्कर्ष हैं। प्रसंगवश, उनके निष्कर्ष को देखना दिलचस्प होगा। रामविलासजी अपने चिर-परिचित निर्णयात्मक अंदाज में कहते हैं - "डा. राम मनोहर लोहिया ने जातिप्रथा पर बहुत लिखा है। परंतु वह आंबेडकर के निकट नहीं हैं। गाँधीजी से भी दूर हैं। जातिप्रथा के संबंध में आंबेडकर और गाँधी एक–दूसरे के ज़्यादा नजदीक हैं।"[42] मज़ेदार बात यह है कि रामविलासजी अपनी इस स्थापना के लिए किसी तथ्य अथवा तर्क का सहारा नहीं लेते, बस निर्णय देते हैं। लोहिया के विचार जातिप्रथा के संबंध में गाँधीजी से दूर पड़ते हैं, यह बात तो ठीक है, लेकिन वे अंबेडकर के भी निकट नहीं हैं –इस बात में पूरी सच्चाई नहीं है। और 'जातिप्रथा के संबंध में आंबेडकर और गाँधी एक-दूसरे के ज़्यादा नजदीक हैं' - इस स्थापना की तर्क-पद्धति तो समझ में नहीं

आती। बहरहाल, जातिवाद के अंत के लिए अन्तर्जातीय विवाह के संबंध में लोहिया के विचारों को अंबेडकर के विचारों के साथ रखकर देखा जाना चाहिए। अंबेडकर का बहुत साफ मानना है कि अन्तर्जातीय विवाह के बिना जातिप्रथा का उन्मूलन संभव नहीं है। अंबेडकर अपने लंबे निबंध 'जातिप्रथा-उन्मूलन' में स्पष्ट लिखते हैं - "मुझे पूरा विश्वास है कि इसका (जातिप्रथा-उन्मूलन का) वास्तविक उपचार अन्तर्जातीय विवाह ही है। केवल खून के मिलने से ही रिश्ते की भावना पैदा होगी ...हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाह सामाजिक जीवन में निश्चित रूप से महान शक्ति का एक कारक सिद्ध होगा। ...अतः जाति व्यवस्था को समाप्त करने का वास्तविक उपाय अन्तर्जातीय विवाह ही है। जाति व्यवस्था समाप्त करने के लिए जाति-विलय को छोड़कर और कोई उपाय कारगर सिद्ध नहीं होगा।"[43] मई, 1960 में 'जाति-अध्ययन और विनाश संघ' के घोषणा-पत्र में लोहिया कहते हैं - "हम अपना 'जाति-प्रथा अध्ययन और विनाश संघ' बनाते हैं, ...जो यह विश्वास करते हुए कि केवल अन्तर्जातीय विवाह से ही अन्ततोगत्वा जातियों का लोप होगा और वैज्ञानिक अध्ययनों और विधायक कलाओं के जरिए इस बात का प्रचार करते हुए, तत्काल हासिल किए जा सकने वाले सहभोज के लक्ष्य पर जोर देगा।"[44]

यहाँ इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि लोहिया सहभोज को जातिगत भेद-भाव को कम करने वाले तात्कालिक उपाय के रूप में ही स्वीकार करते हैं। अंबेडकर की ही तरह लोहिया भी इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि जाति प्रथा पर निर्णायक प्रहार तो अन्तर्जातीय विवाह ही कर सकता है। अपनी इसी दृढ़ मान्यता के आधार पर लोहिया अन्तर्जातीय विवाह और सहभोज को प्रोत्साहन देने के लिए सरकारी नीतियाँ भी बनाने की अपील करते हैं। मार्च-अप्रैल, 1961 में पटना में जाति-विनाश सम्मेलन के प्रस्ताव में लोहिया ने कहा - "जाति-विनाश सम्मेलन की राय है कि चाहे जनसाधारण के लिए अन्तर्जातीय विवाह संबंधी कानून बनाना ठीक न हो, लेकिन सरकार को हक है कि वह अपने नौकरों के संबंध में ऐसे कानून बनाए। जाति-विनाश सम्मेलन की निश्चित राय है कि अब से सरकारी नौकरी उसी को मिले जिस ने अनमेल (अन्तर्जातीय) विवाह किया हो।"[45] इससे पहले जनवरी, 1953 में भी अपने निबंध 'जाति और योनि के दो कटघरे' में लोहिया ने यह बात साफ शब्दों में कही थी - "जिस दिन प्रशासन और फौज में भर्ती के लिए, और बातों के साथ-साथ, शूद्र और द्विज के बीच विवाह को योग्यता और सहभोज के लिए इनकार करने पर अयोग्यता मानी जाएगी, उस दिन जाति पर सही मायने में हमला शुरू होगा।"[46]

लोहिया के पास जाति को लेकर एक स्पष्ट दृष्टिकोण है। जाति को लेकर उनकी समझ व्यावहारिक है। उनके पास जाति-विनाश का कोई त्वरित जादुई उपाय नहीं है। यह हो भी नहीं सकता। लेकिन जाति-विनाश की प्रक्रिया का एक साफ ब्लूप्रिंट उनके पास जरूर है, जो उनके पूरे चिन्तन-लेखन से उभरकर सामने आता है।

जाति-विनाश का कोई व्यावहारिक रास्ता संभवतः अंबेडकर-लोहिया के चिन्तन के समन्वय में तलाश किया जा सकता है।

****

संदर्भ:

[1] लोहिया रचनावली (खंड-2), मस्तराम कपूर (संपा), अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ.- 171
[2] वही, पृ.- 126
[3] वही, पृ.- 125
[4] वही, पृ.- 126
[5] वही, पृ.- 38
[6] वही, पृ.- 198
[7] वही, पृ.- 199
[8] वही, पृ.- 199
[9] वही, पृ.- 247
[10] वही, पृ.- 277
[11] वही, पृ.- 40
[12] वही, पृ.- 38
[13] वही, पृ.- 45
[14] डा. अंबेडकर संपूर्ण वाङमय, खंड-1, डा. अंबेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ.- 92
[15] लोहिया रचनावली (खंड-2), पृ.- 118
[16] वही, पृ.- 129
[17] वही, पृ.- 180
[18] वही, पृ.- 194
[19] वही, पृ.- 277
[20] वही, पृ.- 233
[21] वही, पृ.- 277
[22] वही, पृ.- 282
[23] आधुनिक भारत में जाति, एम॰ एन॰ श्रीनिवास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ.- 23
[24] आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एम॰ एन॰ श्रीनिवास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ.- 100

25 आधुनिक भारत में जाति, पृ.- 96-97

26 देखें, निकोलस बी. डर्क्स, कास्ट्स ऑफ माइंड, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली, 2010, पृ.- 252

27 लोहिया रचनावली (खंड-2), पृ.- 107

28 वही, पृ.- 107

29 वही, पृ.- 119

30 वही, पृ.- 110

31 वही, पृ.- 116

32 वही, पृ.- 117

33 वही, पृ.- 278

34 वही, पृ.- 203

35 वही, पृ.- 102

36 वही, पृ.- 201

37 आधुनिक भारत में जाति, पृ.- 84

38 लोहिया रचनावली (खंड-2), पृ.- 279

39 वही, पृ.- 102

40 वही, पृ.- 184

41 वही, पृ.- 197

42 गाँधी, आंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, डा. रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, भूमिका, पृ.- xiii

43 डा. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड-1, पृ.- 91

44 लोहिया रचनावली (खंड-2), पृ.- 225

45 वही, पृ.- 281

46 वही, पृ.- 90